RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.027

सुमन राजे की दृष्टि में स्त्री-विमर्श

कुमारी सीमा
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.एन.एस.आर.के. कॉलेज, सहरसा

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 October 2020

Keywords
स्त्री-विमर्श, साहित्येतिहास, उत्तर-आधुनिकता

ABSTRACT

सुमन राजे तार-सप्तक में शामिल कवयित्री हैं। किन्तु उनकी पहचान कवयित्री से अधिक साहित्येतिहासकार के रूप में अधिक है। उन्होंने पहली बार स्त्री-दृष्टि से इतिहास लेखन का प्रयास किया। स्त्री की जातीय अस्मिता की तलाश करते हुए उन्होंने 'इतिहास में स्त्री' की तलाश की और गौण कर दी गई अथवा विस्मृत कर दी गई स्त्रियों के योगदान को अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में जगह देकर सामने लाने का प्रयास किया। उन्होंने साहित्येतिहास इतिहास में स्त्रियों को स्थापित करने के क्रम में अपनी स्त्री चिंतन विषयक दृष्टि भी स्पष्ट की है। उन्होंने वैश्विक स्तर पर स्त्री-विमर्श की शुरूआत दिखाने के साथ भारतीय एवं पश्चिमी नारी चिंतन एवं नारी आंदोलन के स्वभावगत अंतर को स्पष्ट किया है। इसके साथ ही भारत में स्त्री-विमर्श के विभिन्न चरणों का तर्कपूर्ण विश्लेषण करते हुए स्त्री चिंतन के अपने सरोकारों को भी सामने रखा है। उनके स्त्री चिंतन से आधा इतिहास की इतिहास दृष्टि को समझने में मदद मिलती है।

मूल आलेख

दुनिया भर में स्त्री-विमर्श की शुरुआत के सूत्र सुमन राजे विभिन्न वैश्विक आंदोलनों के बीच तलाशती हैं। वह लिखती हैं- "1857 में संयुक्त राज अमेरिका में महिलाओं और पुरुषों के समान वेतन हेतु हड़ताल हुई थी। इसी दिवस को बाद में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया गया। 1859 में सोवियत संघ में सेण्ट पीटर्सबर्ग में महिला मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ। फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक बिक्टर ह्यूगो के संरक्षण में महिला अधिकार संगठन की स्थापना की गयी। 1908 में ब्रिटेन में 'वीमेन्स फ्रीडम लीग की स्थापना हुई और 1911 में जापान में महिला मुक्ति आंदोलन का प्रारंभ हुआ।"[i]

स्त्रीवादी विमर्श की शुरूआत में तमाम सारे वैश्विक आंदोलनों के साथ महिला चिंतकों और लेखकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिन्होंने दुनिया में स्त्री चिंतक और जागरूकता का माहौल तैयार किया। इस बारे में राकेश कुमार लिखते हैं - "फ्रांस की ही नहीं, बल्कि दुनिया की प्रखर लेखिका सीमोन द बोउवार ने 'द सेकंड सेक्स' (स्त्री उपेक्षिता) पुस्तक के माध्यम से स्त्रीवादी विमर्श, नारीवादी आलोचना की शुरूआत की थी। जिसे बाद में आगे चलकर केट मिलट, बैटी फरीडन, इरी गैरो, क्रिसिटिबिया, गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने ऐसे विचारोत्तिजक प्रश्नों द्वारा समूचे विश्व के बुद्धिजीवियों लेखकों, कलाकारों को आश्चर्यचकित कर दिया तथा विश्व की पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती दे दी।"[ii]

सुधीश पचौरी स्त्री-विमर्श के उदय को उत्तर आधुनिकता से जोड़ते हुए कहते हैं - स्त्री के अस्तित्व के दृश्यमान हो उठने के पीछे विश्व के स्तर पर उस उत्तर-औद्योगिक यथार्थ का योगदान है जो औद्योगिक सभ्यता और युग के स्थापित जीवन मूल्यों को बदल रहा है। स्त्री का प्रश्न इस अर्थ मतें एक उत्तर-आधुनिक प्रश्न है।... उत्तर आधुनिक स्थितियों ने उन केन्द्रों को व्यर्थ कर दिया जो मूलतः पुरुष केन्द्र थे।"[iii]

इस तरह अलग-अलग परिस्थितियों के कारण पश्चिम में 19वीं-20वीं सदी के बीच स्त्री-विमर्श की शुरूआत होती है। जो आज सारे विश्व की एक मुख्य परिघटना है। भारत में स्त्री-विमर्श का सूत्रपात नवजागरण काल में होता है सुधार आंदोलनों के द्वारा। हालांकि इससे पहले हम स्त्री-विमर्श का एक रूप थेरी गाथा की स्त्रियों, मीराबाई, संत स्त्रियों आदि में देखते हैं लेकिन यह एक आंदोलन का रूप नवजागरण काल में ही लेता है। यह अलग बात है नवजागरणकालीन स्त्री-विमर्श का रूप साहित्यिक न होकर राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना से निर्मित था। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की एक लड़ाई स्त्रियों की मुक्ति के लिए भी लड़ी जा रही थी। तमाम सारे भारतीय समाज सुधारकों,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

चिंतकों ने स्त्री-मुक्ति की लड़ाई में अपना योगदान दिया। जिनमें महात्मा गांधी, राजा राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस लड़ाई में स्त्रियों ने भी सक्रिय भागीदारी निभाई। इसका जिक्र करते हुए सुमन राजे कहती है - "भारत में आधुनिकयुगीन नवजागरण आजादी की लड़ाई के साथ स्त्री-जागरण की लड़ाई भी लड़ रहा था, इसमें महिलाएँ पृथक नहीं थीं।"[iv]

नवजागरणकालीन स्त्री-मुक्ति आंदोलन और तत्संबंधी साहित्य राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित है और यह विमर्श जड़ीभूत रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करता है जिसका स्वर समकालीन स्त्री-विमर्श के स्वर से काफी अलग है। जिसे स्पष्ट करते हुए सुमन राजे लिखती हैं - "उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के महिला लेखन और समकालीन स्त्री-विमर्श में एक मौलिक अंतर है जिसे साफ किये जाने की जरूरत है। वहाँ स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरुष' नहीं है, 'जड़ीभूत रूढ़ियां' हैं जिनके विरुद्ध वे स्वयं भी खड़ी होती हैं और अपनी बहनों को जाग्रत भी करती हैं। ...इस युग के समस्त महिला लेखन में एक विशिष्ट गुण पाया जाता है, वह यह कि किसी भी भावबोध की रचनाएँ हों, राष्ट्रीयता उनकी बुनावट में शामिल है।"[v]

आज हम जिस स्त्री-विमर्श को देख रहे हैं वह नवजागरणकालीन स्त्री-मुक्ति आंदोलन से काफी अलग है यहाँ अब स्त्रियों के उद्धार और सुधार की बात प्रमुख नहीं है। यहाँ प्रमुख बात है पुरुष के बरक्स स्त्री की अस्मिता। जो अपनी मुक्ति चेतना का उत्स पश्चिमी नारी आंदोलनों में देखता है। इस विषय में सुमन राजे लिखती हैं - "समकालीन स्त्री-विमर्श अपने को पूरी तरह से उस पृष्ठ भूमि से काटकर अपनी ऊर्जा पश्चिमी नारी आंदोलनों से ग्रहण करता है। इस तरह वह अपने दोनों तरफ सीमा-रेखाएँ बना लेता है। एक केवल स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य, दो केवल स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य अर्थात् स्त्री द्वारा लिखा गया, स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य ही 'साहित्यिक स्त्री-विमर्श' है।"[vi]

इसी संदर्भ में सुमन राजे अनुभव की प्रामाणिकता और स्त्री मुक्ति बनाम देह मुक्ति का प्रश्न उठाती है। स्त्री-विमर्श में स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का मुद्दा अच्छे बहस का रूप ले चुका है। विमर्शकारों का एक वर्ग इस बारे में कहता है - स्त्री का दर्द सिर्फ स्त्री ही जान सकती है, जैसे कि घायल की गति घायल ही जाने दूजा न जाने कोय। जबकि दूसरा वर्ग कहता है सहानुभूति द्वारा रचित साहित्य भी महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति के अंदर अगर पर्याप्त संवेदनशीलता हो, तो वहाँ यथार्थ का भोक्ता होना आवश्यक नहीं है। किसी के मौत को अनुभव करने के लिए क्या खुद का मरना जरूरी है ?

निराला ने वह तोड़ती पत्थर में एक मजदूर स्त्री के यथार्थ को जिस संवेदनशीलता के साथ उकेरा है वह बहुत मार्मिक बन पड़ा है। यथार्थ की सही पकड़ और मानवीय प्रतिबद्धता ने निराला की इस कविता की कालजयी बना दिया। इस कविता में निराला की आवाज़ में स्वयं मजदूरिन स्त्री का ही दर्द बोलता है। इस तरह से यह कविता दो अनुभूतियों के काव्यांतरण का प्रश्न बन जाती है। ऐसे और भी बहुत से पुरुष लेखक हैं जिनकी आवाज़ में स्त्री का दर्द घुल-मिल गया है। सुमन राजे इस प्रश्न पर अनुभव की प्रामाणिकता से अधिक संवेदन और संप्रेषण की वास्तविक शक्ति का महत्त्व देती हैं। उनका कहना है- "सवाल अनुभव की प्रामाणिकता का नहीं अनुभव की विश्वसनीयता और सम्प्रेषणीयता का उठाया जाना चाहिए और उसके रचनात्मक उत्तर खोजे जाने चाहिए।"[vii] इस तरह वह स्त्री-विमर्श को एक वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखती है जिसके रचनात्मक सरोकार स्त्री की सम्पूर्ण मुक्ति से जुड़े हैं ताकि सिर्फ देह मुक्ति से। स्त्री-विमर्श को देह-मुक्ति का पर्याय बना देने की आलोचना करते हुए वह कहती हैं ऐसा करने से वह अपने उद्देश्य से भटक जायेगी और अन्त में पुरुष सत्ता के ही षड़यंत्रों में उलझकर रह जायेगी।

स्त्री स्वतंत्रता का नारा मुख्य रूप से मानसिक स्वतंत्रता का होना चाहिए। वह लिखती हैं- "निरपेक्ष स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। स्वतंत्रता का मूल अभिप्राय है 'निर्णय की स्वतंत्रता' और स्त्री स्वतंत्रता का रूप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ 'विशिष्ट' महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता।... स्वतंत्रता तब तक बेमानी है जब तक उसके साथ कोई बड़ा सपना न जुड़ा हो, एक ऐसा सपना जो सबके लिए हो।"[viii]

इस तरह वह स्त्री-मुक्ति को स्त्रियों के सम्मानपूर्ण जीवन जीने और न्याय एवं मानवीय गरिमा के अर्थ में प्रस्तुत करती हैं जिसमें सिर्फ आभिजात्य एवं बौद्धिक वर्ग की स्त्रियों की ही मुक्ति नहीं सम्पूर्ण स्त्री समाज की मुक्ति शामिल है। स्त्री मुक्ति का यही रूप महत्त्वपूर्ण है। इस दिशा में और भी कई स्त्री चिंतकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। स्त्री मुक्ति को मानव मुक्ति से जोड़ते हुए प्रसिद्ध कवयित्री अनामिका कहती हैं -"स्त्री मुक्ति का आशय है मानव मुक्ति। जैसे एक स्त्री को शिक्षित करने का आशय है पूरे परिवार का

वैचारिक/मानसिक/बौद्धिक परिष्कार, स्त्री को मानसिक/ बौद्धिक/ आर्थिक/ सांस्कृतिक विकास के लिए यौन शोषण, आर्थिक दोहन और दैहिक मानसिक प्रताड़नाओं से मुक्त करने में मानव-भाव की मुक्ति के सूत्र हैं। स्त्री मुक्ति ने अपने आँचल का परचम फहराया है जिसके छाँव तले दुनिया के सारे निर्धन-निर्बल-निराश्रय अनादृत अपनी साझा मुक्ति की राह बना सकते हैं।"[ix]

साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्त्री-मुक्ति की यह बहुवर्णी छवियां देखी जा सकती हैं। सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद महिला लेखिकाएँ स्त्री मुक्ति के स्वप्न पर लगातार लिख रही हैं। लेखन का यह स्वरूप लगभग सभी भारतीय भाषाओं में दृष्टिगत होता है। स्त्री-विमर्श अपना आरंभिक रूप कविताओं के माध्यम से बनाता है। आगे चलकर वह कथा साहित्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराता है। जब अभिव्यक्ति में खुलापन आने लगा और वैचारिक साहस की प्रवृत्ति विकसित हुई तो महिलाओं ने कविता के आलम्बनों को छोड़कर कथा-भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। इस विषय में सुमन राजे लिखती हैं - "नयी कहानी का दौर वह समय था जब महिलाओं ने अपनी वैचारिक चेतना और अभिव्यक्ति की आकुलता का आधार मुख्यरूप से कहानी को बनाया। कहने के लिए इतना कुछ था कि उसके लिए कविता की चादर छोटी पड़-पड़ जा रही थी।"[x]

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में स्त्री मुक्ति की कविताएँ लिखी जा रही हैं। इन भाषाओं की कवयित्रियों की रचना-प्रक्रिया में भिन्नता हो सकती है। पर सरोकारों के लिहाज से वह एक मत है। सभी की कविताओं में स्त्री मुक्ति का स्वप्न, अन्याय-शोषण के प्रति विद्रोह, आक्रोश और प्रतिरोध का भाव दिखाई देता है। चाहे वह ओड़िया कवयित्री सुचेता मिश्रा हों या कन्नड़ की एस. ऊषा या सिन्धी की मोहिनी हिंगोरानी या असमिया की रीता चौधरी इन सभी की कविताओं में समकालीन स्त्री-मुक्ति का स्वप्न आकार लेता है। इन्होंने अपने लिए एक नई काव्य-भाषा का भी निर्माण किया है जिसमें एक ऊष्मा और ताप दिखाई देती है। जहाँ पारम्परिक बिंबों, प्रतीकों और मुहावरों में एक नये अर्थ की खोज की गयी है। जिसके विषय में मलयालम के प्रसिद्धि कवि के. सच्चिदानन्द कहते हैं - "आज की स्त्री कवियों में स्त्री-मानस को एक भाषा मिली है। इन सबों ने मिली है। इन सबों ने मिलकर लिंग केन्द्रित (फेलोसेबिट्रक) व्यवस्था को ललकारा है, साहित्यिक विधान के प्रतिमानों को पुनः परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। नारी-देह केन्द्रित भाषा की एक समानांतर सांकेतिकी गढ़ी है।"[xi]

कथा साहित्य के भीतर से स्त्री जीवन का यथार्थ बोलता है। समकालीन महिला कथाकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से स्त्री शोषण को उजागर किया ही है साथ ही स्त्री की जिजीविषा और उसके संघर्षों को भी प्रस्तुत किया है। इनमें उषा पियंवदा, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल आदि का नाम मुख्य है। कथा साहित्य पर टिप्पणी करते हुए सुमन राजे लिखती हैं - "इनके उपन्यास समय के सच्चे दस्तावेज हैं। इन्होंने जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं तो नारी जीवन के नाना क्षेत्रों में संघर्ष करती हुई, भीतरी और बाहरी दबाबों और तनावों को सहती हुई इटन के कगार पर पहुँच जाती है। किन्तु इसकी जिजीविषा उसे टूटने से बचा लेती है और संघर्षरत कर देती है। नारी की अस्मिता को पहचानने की वकालत भी की है।"[xii]

अपने विकास क्रम में स्त्री कथा लेखन के सरोकार भी बदले हैं जहाँ आरंभिक दौर में विधवा समस्या-दहेज समस्या, बेमेल विवाह की समस्या आदि को प्रमुखता से उठाया जाता था वहीं आज के कथा लेखन में स्त्री के अस्तित्व की समस्या मुख्य विषय वस्तु है। उसके अस्तित्व की रक्षा कुछ लेखकाओं ने पुरुष के बरक्स देखी है तो कुछ ने सामंती मानसिकता और संस्कारों के वरक्स तो किसी किसी ने यौन विमर्श को ही प्रमुखता दी है। जैसे- मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, रानु मुखर्जी, चित्रा मुद्गल आदि।

निष्कर्ष

इस तरह समकालीन महिला लेखन में काफी विविधता दिखाई देती है। सुमन राजे स्त्री लेखन में इधर आई जागरुकता को सही मानती है पर विभिन्न प्रवृत्ति और विचारधारा की लेखिकाओं का अपने-अपने वादों के चौखटे में सिमटकर रह जाने को खतरनाक मानती हैं। उनका मानना है इससे स्त्री मुक्ति आंदोलन की धार कमजोर पड़ जायेगी। वे लिखती हैं - "स्वतः स्फूर्त लेखन एक बात है, किन्तु किसी बाद के चौखटे में पात्रों को रफू करता बिल्कुल अलग बात। इस तरह से हम रचना को ही नुकसान नहीं पहुँचाते बल्कि उस मूल विचार को कमजोर करते हैं जिसके तहत रचना की जा रही है।"[xiii]

RRIJM 2015, All Rights Reserved

संदर्भ

[i] सुमन राजे; हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृ. 302
[ii] राकेश कुमार; नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकुला पृ. 65
[iii] सुधीश पचौरी; उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 119
[iv] सुमन राजे; हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृ. 302
[v] वही, पृ. 304
[vi] वही, पृ. 305
[vii] वही, पृ. 308
[viii] वही, पृ. 310
[ix] वर्तमान संदर्भ, पृ. 59
[x] सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृ. 315
[xi] वही, पृ. 314
[xii] वही, पृ. 315
[xiii] वही, पृ. 318

RRIJM 2015, All Rights Reserved